Regard to content and context of the answer with students. It can reduce the over burden of the teacher. Students feel happy with these activities as it provides them opportunities to participate without fear and to use their own comfort language in class. Teacher also works as a learner among the students which provides them proud about their language. For this teaching strategy events can be taken from the textbooks or some worksheets can be developed by the teacher herself. After discussing the print material, teacher can use the language and cultural knowledge of students as a study material to encourage them for participation.

****

References:-

1. Agnihotri, R. K. (1996). Sociolinguistic aspects of a multilingual classroom. International seminar on 'Languale in Education', Cape Town, South Africa (Jan 15-20, 1996).
2. Agnihotri, R. K. (2001). English in Indian education. In C.J. Daswani (eds.), Language education in multilingual India (pp.186-209). UNESCO: New Delhi.
3. Agnihotri, R. K. (2010). Multilinguality and the teaching of English in India. EFL Journal 1:1 (Jan. 2010).
4. Agnihotri, R. K. (2015). Multilingualism vital for across the curriculum. DHNS (May 8, 2015).
5. Anandalakshmy S. (2010). A Report on an Innovative Method in Tamil Nadu (ACTIVITY BASED LEARNING).
6. Kaur, Paramjeet (2019). Language learning in multilingual settings at primary level. Ph.D thesis submitted in JMI: New Delhi.
7. Koul, Omkar N. (2001). Language preferences in education in India. In C.J. Daswani (eds.), Language education in multilingual India (pp.337-383). UNESCO: New Delhi.
8. NCERT (2005). National Curriculum Framework. NCERT: New Delhi.
9. NCERT (2006). Position paper of National Focus Group on Indian Languages. http://ncert.nic.in/html/pdf/schoolcurriculum/Position_Papers/Indian_Languages.pdf
10. Pandit, P.B. (1972). India as a sociolinguistic area. Poona: University of Puna.
11. Pattanayak, D. P. (1981). Language and Politics. In Language and Social issues. Princess Leelavati Memorial Lectures. University of Mysore: Mysore.
12. Pattanayak, D. P. (1984). Multilingualism and language politics in India. India International Centre Quarterly, Vol.11, No.2, Language, pp. 125-131.http://www.jstor.org/stable/23001652

प्राचीन बौद्ध स्मारकों का सांस्कृतिक महत्व

दिव्या सिंह
शोधार्थी इतिहास
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

प्रस्तावना - संस्कृति शब्द का तात्पर्य संस्कारित या परिष्कारित कार्य है। यह संशोधन की सतत प्रक्रिया है। संस्कृति, मानव समाज के भाव विचारों और उनके जीवन में व्यवहार से संबंधित है, जबकि सभ्यता उसके बाह्य जीवन से संबंधित है। विशाल देश भारत में वृहत्तर परिपेक्ष्य में भारतीय संस्कृति एक होते हुए भी धार्मिक दृष्टि से बौद्ध, जैन, हिन्दि आदि संस्कृतियों में बंटी हुई है। प्राचीन भारत की संस्कृति के अध्ययन के लिये पुरातात्विक सामग्री एक अपरिहार्य स्रोत है। भारतीय पुरातत्व में बौद्ध केन्द्रों और स्मारकों का अद्वितीय स्थान है, क्योंकि ''हमारे देश (भारत) में जो पुरातत्व अवशेष हैं वे हमारी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर है। उनकी संख्या प्रायः 1800 है जिनमें 1400 अवशेषों के स्थल नितान्त बौद्ध परम्परा के है।''

बौद्ध संस्कृति का महत्व -प्राचीन बौद्ध केन्द्र धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक रहे हैं। यही कारण है कि जहाँ बौद्ध केन्द्र हैं, वहीं जैन और ब्राह्मण धर्मों के भी केन्द्र स्थापित और विकसित होते रहे हैं। वे पारस्परिक सौहार्द्र के केन्द्र थे। वर्तमान की भाँति उनमें धार्मिक कटुता और विद्वेष की भावना नहीं थी। यदि कहीं एकाध उल्लेख मिलते भी होंगे तो वे किसी कारण घटना के फलस्वरूप ही होंगे।

इस धार्मिक और सांस्कृतिक सहिष्णुता का कारण यह था कि उनका अन्तर-भेद, धर्म में नहीं था, वह अन्तर था धर्म-पालन विधि और प्रक्रिया में। उनके दार्शनिक विचारों में अन्तर था। उस समय के लोग किसी बात का खण्डन-मण्डन, शास्त्र ग्रन्थ लिखकर करते थे। कभी-कभी तो बौद्धिक प्रतिद्वन्दात्मक प्रतियोगिता कई पीढ़ी तक गुरू-शिष्य परम्परा के माध्यम द्वारा चलती रहती थी।

प्राचीन भारत की एक सांस्कृतिक स्वस्थ परम्परा यह भी थी कि दार्शनिक प्रतियोगिता में पराजित होने वाला विद्वान, विजयी विद्वान को अपना गुरू मानकर उसका शिष्यत्व स्वीकार कर लेता था और अपने पूर्व के सिद्धान्त या सिद्धान्तों का पूर्णरूपेण परित्याग कर देता था। पूर्व बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि पंचवर्गीय परिव्राजकों ने, काश्यप बन्धुवों ने और सारिपुत्र मौद्गल्यायन आदि ने इसी प्रकार बुद्ध का शिष्यतव स्वीकार किया था। वेद-बेदांग पारंगत अश्वघोष और बुद्धघोष ने भी इसी प्रकार बुद्ध धर्म स्वीकारा था। ज्ञातव्य है कि अश्वघोष ने बुद्धचरित और सौन्दरनन्द (महाकाव्यों) सारिपुत्र प्रकरण (नाटक) वज्रसूची (चम्पू काव्य) की संस्कृत में रचना करके कालिदास का पथ प्रशस्थ किया। बुद्धघोष ने बौद्ध दर्शन का दरूह ग्रन्थ 'विसुद्धि मग्ग' तथा पालि त्रिपिटक ग्रन्थों पर भाष्य (अट्ठ कथायें) लिखीं।

भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख आधार कला और स्थापत्य है। सिन्धु घाटी के हड़प्पा और मोहनजोदड़ी आदि केन्द्रों के पुरातात्विक उत्खननों से ही यह ज्ञात हो सका कि भारत में सुनियोजित ढंग से भवनों का निर्माण तथा तांबे और पत्थर की मूर्तियाँ का बनाना पूर्व सिन्धु सभ्यता (ई0पू0 3500-3000) के युग में प्रारम्भ हुआ था। उसके पश्चात् एक लम्बे अन्तराल तक भारतीय इतिहास अन्धकारपूर्ण रहा। नगरों के निर्माण के कोई पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त नहीं होते।

पुनः बड़े-बड़े नगरों का निर्माण बुद्ध और महावीर युग (छठवीं और पाँचवी शताब्दी ई0पू0) से प्रारम्भ होते पाते हैं। जब श्रावस्ती, राजगृह, वैशाली, साकेत, पाटलिपुत्र, जैसे विशाल नगरों का सुनियोजित निर्माण हुआ। कुछ का गौतम बुद्ध द्वारा उद्घाटन भी करवाया गया। उनमें पाटलिपुत्र प्रमुख था। इसीलिये इसे द्वितीय नगरीय सभ्यता का युग कहते हैं। इन नगरों के ध्वंसावशेष पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त होते हैं जिन्हें देखकर नगरों के नियोजन और भवनों के निर्माण का पता चलता है।
सिन्धु सभ्यता के पराभव के साथ ही मूर्ति निर्माण कला का भी अवसान हो गया। पूनः उनकी प्राप्ति मौर्य युग के उद्भव (लगभग 322 ई0पू0) के साथ होने लगती है जो कला की दृष्टि से बहुत सुडौल नहीं मानी जाती। लेकिन अशोक के युग में (274-232 ई0पू0) उत्कृष्ट मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं, जिनमें हस्ति, अश्व, बृष, सिंह, मोर, हंस आदि की मूर्तियाँ, बोधिवृक्ष, धम्म चक्र, त्रिरत्न आदि की प्रतीक मूर्तियाँ मुख्य हैं।

ज्ञातव्य है कि सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध की अस्थि धातुओं को रामग्राम स्तूप के अलावा सात स्तूपों से कुछ अंश सुरक्षित छोड़कर, उन्हें निकाल कर चौरासी हजार भागों में विभाजित करके उन पर पूरे जम्बू द्वीप में उतने ही, अर्थात् 84,000 स्तूपों का निर्माण करवाया था। उन्हें भली-भाँती दीप मालिकाओं से सुसज्जित कर कार्तिक मास की अमावस्या (द्वितीय उपोसथ दिवस) को सबका एक साथ उद्घाटन करवाया था। यही दीपमालिका पर्व कहलाया जो आज भी भारत में (विशेषकर उत्तरी भारत में दीपावली के नाम से मनाया जाता है)।
सम्राट अशोक के तीसरे शिलालेख से पता चलता है कि उसने स्तूपों की स्थापना के अलावा मिश्र, मेसिडोनिया तथा मिश्र के पश्चिम में स्थित सीरीस, एपिरस और यूनान जैसे दरस्थ देशों को सद्भावना सन्देश भेज कर मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये थे। भारत के विभिन्न भू-भागों (काश्मीर, गान्धार, मैसूर उत्तरी कनारा, अपरान्त, महाराष्ट्र और हिमवन्त प्रदेश) के अलावा धर्मराज अशोक द्वारा श्रीलंका, यवन देश, पेगू, वर्मा तथा अन्य समुद्रतटीय देश (सुवर्ण भूमि) को बुद्ध के मानव कल्याणकारी उपदेशों के साथ भिक्षु मण्डल भेजे गये थे। जिसकी पुष्टि साँची से प्राप्त अभिलेखीय साक्ष्य से भी होती है।

सम्राट अशोक का इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य पाषाण स्तंभों की स्थापना और उन पर मानवीय शील समाचरण के सद्धर्म वचन अंकित करवाना, उन्हें विभिन्न पशुओं की मूर्तियों, प्रतीकों से अलंकृत कराना और अभूतपूर्व चमकदार पालिश का प्रयोग करना, कठोर से कठोर शिला-खण्डों को चौरस और समतल करवाकर उन पर सद् धम्म उपदेशों को खुदवाना था। ये स्तम्भ और अभिलेख हजारों वर्षों की वर्षा, धूप, आँधी-तूफान आदि विषय पर्यावरणीय परिस्थितियों को झेलते हुए आज भी भारत ने ही नहीं, नेपाल, पाकिस्तान और अफगानिस्तान तक विद्यमान है।

अशोक पहला सम्राट था जिसने निर्माणकला में सबसे पहले उन्हें चिरस्थायित्व प्रदान करने के लिये पत्थर का प्रयोग किया, जिसे वह अपने सातवें स्तंभ अभिलेख में स्पष्ट करता है। वस्तुतः यह भारतीय निर्माणकला के लिये उसकी अद्वितीय देन थी। जिसके अभाव में उसके समस्त शिलाभिलेखों, स्तम्भ अभिलेखों तथा गुहाभिलेखों से तो हम सब लोग वंचित हो ही जाते, उन पर निर्मित विश्व श्रेष्ठ कला (सारनाथ के स्तम्भ पर चार सिंहों युक्त शीर्ष भाग) के ज्ञान से भी वंचित रह जाते।

श्रावस्ती में महा उपासक अनाथपिण्डिक द्वारा स्थापित जेतवन विहार के उत्खनन से यह स्पष्ट हो गया कि 12वीं शताब्दी ई0 तक इन विहारों का जीर्णोद्वार और पुनर्निमाण होता रहा। जैसा कि यहाँ से प्राप्त कन्नौज के गहड़वाल शासक गोविन्द चन्द्र के एक ताम्र पत्राभिलेख से ज्ञात होता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि गोविन्द चन्द्र की रानी कुमारदेवी ने सारनाथ में 'धर्म चक्र जिन विहार' की स्थापना करवाई थी, जिसके खण्डहर पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। इन खण्डहरों को देखकर विहारों का नियोजन, तल विन्यास उसके भागों का सुस्पष्ट चित्र आँखों के सामने प्रस्तुत होता है। इन स्मारकों के अभाव में विनय पिटक में वर्णित विहारों और उनके अंगों के आकार-प्रकार और निर्माणस्वरूप की जानकारी शायद संभव न हो सकती। विनय पिटक के महावग्ग और चुल्लवग्ग से पता चलता है कि विहार निर्माण के स्थल का चयन नगर-ग्राम से नाति दूर और नाति समीप ही होना चाहिये। (गामतो नेव अति दूरे न उच्चासने) बुद्धों ने बौद्ध भिक्षुओं के लिये जिन आवासों की आज्ञा दी थी, वे थे- विहार, अदुयोग, प्रासाद, हर्म्य और गुहा। इनमें सबसे पहले 60 विहारों का निर्माण राजगृह के एक दायक उपासक ने करवाया था। (सठि विहारा कारापिता) चार प्रकार की गुफाओं का उल्लेख मिलता है। ये ईटों द्वारा निर्मित (इट्टा गुहा) पत्थर द्वारा निर्मित (सिला गुहा), काठ (लकड़ी) द्वारा निर्मित (दारू गुहा) और मिट्टी की बनी हुई गुफाएँ (पांसु गुहा) होती थी।

विनय पिटक में कुटी भी भिक्षु आवास के लिये अनुमन्य बतलाई गई है। पाराजिक (विनय पिटक के अन्तर्गत) से पता चलता है कि आलवी (नेवल, जि0 उन्नाव) के भिक्षु, एक कुटी का निर्माण करवा रहे थे जिसमें उन्होंने उसकी अनुमन्य लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई का ध्यान नहीं रखा था, जिसके कारण उन्हें भगवान बुद्ध की ताड़ना सहनी पड़ी थी। निर्धारित माप के अनुसार कुटी की लम्बाई बुद्ध के 12 वित्ता, चौड़ाई 7 बित्ता होनी चाहिये। इसे राहुल सांकृत्यायन जी क्रमशः 10 फिट 6 इंच और 6 फिट मानते हैं। विहार के अंगों का उल्लेख चुल्लवग्ग में इस प्रकार प्राप्त होता है-

परिवेण, उपट्ठानसाला, कोट्ठक, अग्गिसाला, कप्पिय कुटी, वच्च कुटी, चंकं, चंकमनसाला, उदपान, उदपानसाला, जन्ताघर, जन्ताघर साला, पोक्खरणी और मण्डप।

इनमें से परिवेण विहार के मध्य का आँगन ही होता था, जहाँ बैठकर शिष्य पढ़ते थे। कोट्ठक (कोठा) विहार के मुख्य द्वार की कोठरी होती थी। उपट्ठानसाला, भोजन करने का अथवा भोजन रखने का कमरा था। अग्गिसाला, आग रखने का छोटा कमरा होता था, क्योंकि आग को निरंतर सुरक्षित रखना आवश्यक था। कप्पिय कुटी, भण्डारगृह था। वच्च कुटी, शौचालय भाग था। चंकं टहलने का खुला चबूतरा और चंकमसाला आच्छादित टहलने का स्थान होता था।

उदपान, कुआँ था और उदपानसाला ढका हुआ कुआँ, जिसके पास एक कमरा होता था अथवा कमरे के अन्दर का कुआँ। जन्ताघर, स्नानगृह ही था। महोदय रीज डेविड्स और सी.ए. उपासक इसे ‘ऊष्मा स्थान गृह‘ मानते है जो गर्म रहता था। पोक्खरणी, पुष्करणी या जलाशय होता था और मण्डप, विहार का मूर्तिगृह होता था। विहार के इन सभी अंगों को जेतवन के उत्खनन में प्राप्त बौद्ध विहारों में स्पष्ट देखा और समझा जा सकता है जिनका वर्णन राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक ‘जेतवन श्रावस्ती‘ में किया है।

पस्साबगुटी, पेशाबघर ही था जिसमें पेशाब करने के लिये पेशाबदान (पस्साब कुंभि या पस्साब दोणी) होता था। दुर्गन्ध न फैले, इस लिये पेशाबघर को ढक्कन (अपिधान) से ढक दिया जाता था।

विहार में एक उपोसथागार भी होता था जहाँ महीने के चार उपोसथ दिवसों (दो अष्टमी, अमावस्य और पूर्णिमा) को भिक्षु और उपासक अलग-अलग समय पर विहारों में उपोसथागार में एकत्रित होते थे। यह बड़ा हाल ही होता था। विहार में भिक्षुओं के काषाय वस्त्र रंगने के लिये ‘रंगसाला‘ का भी निर्माण किया जाता था। विहार की वाउन्डरी दीवाल को प्राकार कहा गया है।

यदि जनरल एलेग्जन्डर कनिंघम, कार्लाइल, डी.आर. साहनी, डॉ. फ्यूहरर, सर जॉन मार्शल आदि पुरातत्ववेत्ताओं प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्रों के टीलों, डीहों और खेड़ों का उत्खनन न करवाया होता तो भरहुत, बोधगया, सारनाथ, तक्षशिला आदि के बौद्ध स्मारकों और कलाकृतियों तथा उनमें सन्निहित भारतीय सांस्कृतिक निधि से सभी पाठक अनभिज्ञ ही रह जाते। वास्तव में बौद्ध स्थापत्य कला का सुस्पष्ट ज्ञान लोगों को बौद्ध केन्द्रों के उत्खनित स्तुपों और विहारों के खण्डहरों को देखकर ही हो पाता है। नालन्दा के खण्डहरों को देखे बिना, नालन्दा विश्वविद्यालय का पूरा चित्र ही सामने नहीं आ सकता था।

भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग मूर्तिकला भी हैं डॉ. सी.एस. उपासक के शब्दों में- ‘‘मूर्तिकला में संसार की सुन्दरतम् प्रतिमाओं में से तीन प्रतिमाएँ सर्वोपरि हैं। इनमें एक सारनाथ के संग्रहालय में है। दसरी मथुरा संग्रहालय में और तीसरी प्रतिमा राष्ट्रपति भवन को सुशोभित कर रही है। ये तीनों प्रतिमाएँ भगवान बुद्ध की हैं। पुरातत्विक सर्वेक्षण और उत्खनन के अभाव में ये मूर्तियाँ प्रकाश में न आ पातीं और पाठक ही नहीं, सम्पूर्ण भारत, विश्व में मूर्तिकला के गौरव सम्मान से वंचित रह जाता। यह है भारतीय संस्कृति के लिये बौद्ध केन्द्रों और स्मारकों का महत्व।

उपसंहार -

भारतीय संस्कृति के मूलाधारों में सत्य, अहिंसा, करुणा, बंधुता जैसे शाश्वत मूल्य हैं। इन मूल्यों के प्राचार-प्रसार में सैकड़ों वर्षो की अवधि में अन्य धर्मों व संस्कृतियों के साथ-साथ बौद्ध धर्म ने जितना योगदान दिया, वह असाधारण है। मनुष्य को मानवीय गुणों से परिपूर्ण बना कर उसे निरंतर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने का बौद्ध धर्म का यह महान कार्य भारत की सीमाओं के बाहर तक पहुंचा और आज इसकी उपलब्धियॉ सम्पूर्ण मानव समाज की धरोहर है।

अतः सारांश रूप में यह कहना समीचीन होगा कि प्राचीन बौद्ध केन्द्रों का अध्ययन भारतीय कला और संस्कृति के अध्ययन के लिये अपरिहार्य साधन है। उनसे धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक बन्धुता, करूणा, दया तथा मानवीय गरिमा और स्वावलम्बन बोध की शिक्षा मिलती है। ये केन्द्र वस्तुतः मौन शिक्षक के समान ही हैं। ये स्थापत्य कला, चित्रकला और मूर्ति शिल्प की उत्कृष्ठता के प्रमाण पत्र तो हैं ही, सतत् और सार्थक प्रेरणास्रोत भी हैं।

****

सन्दर्भ -

1. डॉ. अँगनेलाल, ‘बौद्ध संस्कृति‘, प्राक्कथन, पृ. दो
2. महावग्ग, पृ. 10-13
3. डॉ. श्रीमती यमुनालाल, भारत तथा विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक, पृ. 11
4. महावग्ग, पृ. 38-41,
5. डॉ. अँगने लाल, बुद्ध शासन के रत्न, पृ. 31-32
6. दीर्घ निकाय, हिन्दी, पृ. 124-126
7. बुद्धचरित 28/659.
8. महावंस, परिच्छेद-12, पृ. 60-63
9.. वी.एस. अग्रवाल, सारनाथ, पृ. 19,
10. चुल्लवग्ग, पृ. 252/24
11. विनय पिटक, हिन्दी, पृ. 451,
12. पाराजिक, पृ. 215/12
13. चुल्ल. 231/1
14. डॉ. अंगने लाल, बौद्ध संस्कृति के विविध आयाम, पृ.2-3